पंचकोशी का पड़ाव

- समय के साथ पंचकोशी भी एक पड़ाव बन गया है। आज पंचकोशी के रास्ते पर यात्री तो जा रहा पर यात्रा मानो स्थिर है। परिवर्तन जैसे परम्परा की छांव छोड़ चुके हों और अब छावनी में तब्दील नुमाइशी दुनिया में परम्परा नतमस्तक हो कर निःशब्द पड़ गया है। हाय!.. यह दुनियां, भक्ति का भूखा भक्त अब भूख के लिए पैसों का भूखा हो गया है। पैसा आज सबसे बड़ा भगवान है। पैसा एक ऐसा ईश्वर जिसका कोई धर्म नहीं सिवाय फायदे के! यहीं बनारस में चितईपुर के पास एक बाऊ साहब धरमत सिंह का दुआर था। धरमत सिंह के दुआर पर हर साल पंचकोशी का पड़ाव लगता था। दो-तीन दिन के पड़ाव के लिए पूरी व्यवस्था बाऊ साहब अपनी जेब से करते थे। मुझे याद है लगभग बाइस साल पहले मेरे गाँव से शिवाला के चौक पर मत्था टेक पंचकोशी यात्रा के लिए एक जत्था चली थी। चलने वाली भींड़ में दादी सबसे आगे थीं। समूचे गाँव से जो जत्था चली थी उसमें मैं सबसे छोटा था। यात्रा का दूसरा पड़ाव बाऊ साहब के घर के पास लगा था। मेरी दादी हर साल यहाँ रुकती थीं। दादी को पता था कि बाऊ साहब के दादा अंग्रेजों के समय के बड़े जमींदार थे। अपने समाज में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कहते हैं रईस की रवानगी भले खत्म हो जाए लेकिन उसकी रहिसियत मुफ़लिसी के दौर में भी दम नहीं तोड़ता है। जमींदारी उन्मूलन के बाद उनके पास भले ही जमीन का टुकड़ा भर बचा हो लेकिन उनके धर्मार्थ सेवा में तनिक भी फर्क नहीं पड़ा था। हो मजाल की उनकी चौखट से कोई प्यासा चला जाए एक डब्बे में गुड़ व गागर में पानी उनके दुआर पर हमेशा भरा रहता था। पहले के लोग पैसे के नहीं बल्कि परवरिश के धनवान होते थे। यह उनमें दिखता था। दुआर के सामने एक शिव जी का मंदिर और कुआँ भी था। पड़ाव उसी कुँए के पास पीपल की पेड़ के नीचे रुकता था।

मेरे तरफ मूंगफली की खेती होती थी तो मेरी दादी हर साल धरमत सिंह को मूंगफली लाकर देती थी। लगभग एक बजे दोपहर में हम सब बाऊ साहब की दुआर पर पहुंच चुके थे। शाम में बाऊ साहब आए मेरी दादी को नमस्कार करते हुए बोले चाची मूंगफली ना ले अईलु? दादी बोली 'नाही लाल असो बाढ़ आ गयल सब खेती खराब हो गयल' फिर बाऊ साहब बोले 'चला ठीक ह, ई बताव चाची कि खराई हो गयल? दादी बोली 'हाँ बचवा हो गयल।' शाम का समय था, उस समय बिजली उतनी नहीं थी, दादा जी रास्ते के लिए लालटेन लेकर गए थे। लेकिन शाम में बाऊ साहब दुआर पर पेट्रोमैक्स जलवा दिए। उस दिन शाम में बाऊ साहब के पनिहार, सरवाह और हरवाह मिल कर भोजन में बाटी-चोखा और दाल बनाए थे। दादी दूसरी ओर शिव भजन गा रही थीं। बरवा मिलल बौरहवा भला कइसे गउरा बिअहिबै हो' (यह एक प्रचलित लोक गीत था जिसका प्रसंग है, जब शिवजी गौरा माँ के घर भूत-प्रेत बारात लेकर आते हैं तो उनकी माता विवाह के अगुआ नारद से भगवान शिव की शिकायत करती हैं) , दूसरा भजन कुछ इस प्रकार था कि 'जेकर बाबा विश्वनाथ उ अनाथ कइसे, जवना दुआरी सब दिल से दयाल हो, जहवां भिखारी भईल जा के महिपाल हो, कोई उहवाँ से लौटी खाली हाँथ कइसे, जेकर बाबा विश्वनाथ उ अनाथ कइसे।' यह गीत अपने समय में बनारस के लोक गायक बाबू विजयी सिंह द्वारा गाया गया था। अगले सुबह तड़के हमलोग अपनी यात्रा पर पुनः वापस चले गए। बाऊ साहब के द्वारा जो ख़ातिरदारी किया गया वह ख़ातिरदारी नहीं लगा एकदम अपना सा लगा था।

आज वहीं बाइस साल बाद जब मैं उसी रास्ते से गुजर रहा था तो बहुत से नए मकानों के बीच में मुझे बाऊ साहब का घर एकदम खंडहर जैसा दिखाई दिया। मेरे स्मृतियों में तुरन्त बाऊ साहब का चेहरा उनकी शांत मनोचित वाले मुखार के रूप में मुखर हो गयी। मैं सहसा रुक कर उस घर को देखने लगा मानों वह घर और सूखा कुआँ मेरे तरफ देख कर मुस्कुरा रहा हो और अपनी करुणा भाव से बार-बार अपने छाँव तले बुला रहा हो। मैं रुका और बगल के घर वालों से उस मकान के बारे में पूछने लगा। उन्होंने बताया कि जब तक धरमत सिंह जिंदा थे, तब तक वह इसी मकान में रहे। उनका एक बेटा लंबी बीमारी से मर गया। दूसरा बेटा उड़ीसा में क्लर्क की हैसियत पर है और कई वर्षों से वह यहाँ नहीं आया है। मैं उस घर को देखता रहा। कुएँ के बगल में उन्हीं के जमीन पर एक चमकदार दुकान थी। अचानक मेरे आंख भर आए, होंठ सूखने लगा। उसी दुकान से बिसलेरी का पानी खरीद कर मैंने पिया। मैं उस ढहे हुए मकान को देख रहा था। बाऊ साहब मानों आज भी असहाय अवस्था में बैठे हों। अपनी व्यथा को समेटे मुझे देख रहे हों। मुझे लगा बाऊ साहब का ढहता घर जैसे इंसानियत का पतन हो आखिर जिस समाज में पानी पिलाना उपकार समझा जाता था वहाँ आज पानी पैकेट में बिक रहा हो तो यह परिवर्तन नहीं बल्कि पतन ही है। आज समाज में धर्मार्थ कार्य भी एक धंधा बन गया है जिसकी बुलंदी पर जो है, वह धन से धनवान है। व्यवहार से धनवान तो बाऊ साहब थे।

प्रवीण वशिष्ठ (शोध छात्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय)